International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 25-03-2023, Accepted: 11-04-2023, Published: 26-04-2023
Volume 5, Issue 2, 2023, Page No. 4-5

हिन्दी रंगमंच की विकास यात्रा

उषा
पीएचडी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दल्ली, भारत

सारांश
हिन्दी साहित्य में रंगमंच का अपना एक अलग ही इतिहास है। जिसे बिन नाटक के नहीं समझा जा सकता अर्थात् नाटक और रंगमंच साथ–साथ विकसित हुए है। यह एक–दूसरे से अन्योन्याश्रित संबंध रखते हैं जहाँ अन्य साहित्यिक विधाएं अपने आप में पूर्ण होती है वहीं नाटक की पूर्णता रंगमंच पर जाकर ही होती है। पूरे भारतीय नाटकों और रंगमंच के इतिहास को हम तीन भागों में बांट कर देख सकते हैं प्राचीन, मध्य और आधुनिक।

मूल शब्दः साहित्य में रंगमंच, प्राचीन, मध्य और आधुनिक, साहित्यिक विधाएं

प्राचीन रंगमंच यानि संस्कृत के 'शास्त्रीय रंगमंच जो [1] सदी से 10वीं सदी तक मिलते हैं। 'भरत' के अपने 'नाट्यशास्त्र' में तीन प्रकार के रंगमंचों का वर्णन किया है बंद रंगमंच, मुक्त आकाशी, मदिरों की यात्राओं में। प्राचीन काल से नाटक और रंगमंच साथ–साथ थे नहीं तो ये परम्परा इतनी विकसित न हो पाती। ''संस्कृत का रंगमंच बड़ा ही धनी और समुन्नत था। महाकवि कालिदास, भवभूति और भास के नाटक किसी सामान्य रंगमंच पर अभिनीत भी नहीं हो सकते। संस्कृत के शास्त्रीय ग्रन्थों में इस रंगमंच को, जो प्रधानतः राजाओं द्वारा संपोषित था और जिसे जनता मुक्त हस्त होकर अपना सहयोग प्रदान करती थी, सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरण पाया जाता है। उदाहरण के लिए वहाँ केवल रंगमंच की लम्बाई–चौड़ाई के आधार पर ही विकृष्ट, चतुरस्त, तमस्र आदि भेद नहीं किए गए हैं, 'रंगशीर्ष और नेपथ्यग्रह' के निर्माण की विधियाँ भी बताई गई है। और तो और रंगमंच के खंभों और भित्तियों पर उत्कीर्षित चित्रों का ब्यौरा भी दिए हैं।''[1]

मध्यकाल तक आते–आते संस्कृत नाटकों की शास्त्री परम्परा खत्म हो गई और लोक परम्परा शुरू हो गई थी ऐसा होने के दो कारण माने जाते हैं। 'प्रथम' मुसलमानों के कारण क्योंकि इस्लाम धर्म में अनुकरण को खुदा की नकल माना जाता है तथा 'दूसरा' यह कि मुसलमानों के कारण ऐसा नहीं हुआ। किसी भी देश के इतिहास में ऐसा देखा गया है कि जिन चीजों को शास्त्र नहीं रख पाता है तो उसको लोक जीवित रखता है और ये हर सभ्यता संस्कृति में होता है। अतः मध्यकाल में लोक नाटकों के उदय का कारण यही था मध्यकाल के नाटकों पर भक्तिकाल की भक्ति संवेदना ने अनेक प्रकार से प्रभावित किया था जिससे मंदिर केवल आराधना का स्थान नहीं बल्कि नाटक खेलने का भी स्थान था अर्थात् प्रत्येक मंदिर का स्थापत्य ऐसा होता था जिससे वहाँ एक रंगमंच का निर्माण भी हो सके। मूलतः दक्षिण के मंदिरों का जो स्थापत्य है उस का जिक्र भरत अपने नाटय शास्त्र में भी करते हैं यानि लोक रंगमंच, प्राचीन शास्त्रियों रंगमंच से अलग नहीं था बल्कि उसमें मिलते हुए आया। इन रंगमंच पर रासलीला, रामलीला, भांड, ख्याल, नौटंकी, कीर्तिनियां, विदेसिया आदि नाटक खेले जाते थे।

आधुनिक काल में नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में दो महत्त्वपूर्ण घटना बंगाल में घटी प्रथम लेबडेफ का आम बंगालियों के बीच नाटक दिखाना, दूसरा 1831 में हिन्दू रंगमंच की स्थापना लकत्ता में होना, इस रंगमंच पर सबसे पहले भवभूति का उत्तर रामचरित और सेक्सपियर का अनुवाद किया नाटक दिखाया गया हिन्दी के क्षेत्र में रंगमंच देख जाए तो ''पहला रंगमंच लखनऊ के कैसर बाग में नवाब वाजिद अली शाह के समय 1953 में बना और सबसे पहले इस पर कवि 'नासिख' के शिष्य 'सैयद आगा हसन' अमानत लिखित इंदर–सभा नामक गीति नाट्य का भिनय किया गया।''[2]

1852 के आस–पास ही पारसी रंगमंच की स्थापना हुई तथा इन लोगों ने 'भारत में पहला व्यावसायिक रंगमंच 1870 में स्थापित किया इसके संस्थापक 'सेठ पेस्टन जी फ्राम जी' थे और इसका नाम था 'ओरी जनल थियेट्रिकल कंपनी'। इसका आदर्श बम्बई में पहले स्थापित अंग्रेजी रंगमंच था जो स्वतः शेक्सपियर कालीन रंगमंच के आधार पर निर्मित था।''[3] पारसी रंगमंच के तीन नाटककार सबसे ज्यादा महतवपूर्ण थे राधेश्याम कथावाचक, नारयण बेताब, आगा हश्र कश्मीरी। पारसी रंगमंच के साथ एक–दूसरे प्रकार का रंगमंच भी भारत के उत्तरी क्षेत्र में विकसित हो रहा था जिसे 'नौटंकी' कहा जाता है। नौटंकी में खुला रंगमंच का प्रयोग किया जाता था तथा इसलिए उन्हें परदे और सेटिंग की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इस रंगमंच पर खेले गए ज्यादातर नाटक पद्यबद्ध अथवा संगीतमय होते थे इसीलिए नौटंकी में नगाड़ा बहुत महत्वपूर्ण होता था। इन कम्पनियों का बाद में पतन होने लगा इसके कारण यह थे कि साधन सीमित थे और जीवन के बहुमुखी चित्र को न दिखाकर बस जनता को अभिभूत किये रखते थे इनका सांस्कृतिक धरातल अत्यंत निम्न कोटि का था। पारसी रंगमंच, नौटंकी, इन्दर सभा के प्रति धीरे–धीरे तीखी आलोचना होने लगी जिससे इन्हें साहित्यिक क्षेत्र में उतना सम्मान न मिल पाया। पारसी रंगमंच के पतन के समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक अव्यवसायिक रंगमंच की परंपरा शुरू की तथा 1868 में 'जानकी मंगल' (चित्रा प्रसाद त्रिपाठी) का खेला गया और भारतेन्दु ने विद्यासुन्दर नाटक का अनुवाद खड़ी बोली में किया। भारतेन्दु के बाद पं. माधव शुक्ल ने प्रयाग, लखलनऊ, जौनपुर और कलकत्ता में हिन्दी नाट्य समितियों की स्थापना की फिर यह परंपरा जयशंकर प्रसाद के समय में पहुंची जहां एक विवाद भी हुआ कि नाटक रंगमंच के हिसाब से हो या रंगमंच के हिसाब से नाटक।

प्रसाद के बाद दो प्रकार के रंगमंच हिन्दी इतिहास क्षेत्र में मिलते हैं– (1) जन नाट्य मंच (इप्टा), (2) पृथ्वी थियेटर इप्टा का एक खास मकसाद था ये ब्च से जुड़ा हुआ था। इसका मुख्य उद्देश्य नाटक द्वारा जनता में ब्च की राजनैतिक विचारधारा का प्रसार करना था इप्टा का सबसे प्रसिद्ध नाटक था 'भूखा है बंगाल' इनका रंगमंच लोक रंगमंच और शास्त्रीय रंगमंच से मिलकर तैयार किया गया था जिसके बाद में नुक्कड़ नाटक के तौर पर प्रयोग किया करते थे। इप्टा मुक्त नाटक दिखाता था।

पृथ्वीराज कपूर ने 1944 में मुंबई में पृथ्वी थियेटर्स की स्थापना की यह एक व्यावसायिक कम्पनी थी लेकिन उसके बावजूद इसके सामाजिक सरोकारों से अपने को जोड़ रखा। ये पारसी रंगमंच की तरह घुमंतू थे तथा हर छोटे–छोटे शहरों में इनकी रंगमंडली जाती थी। इसका पहला नाटक शकुंतला था लेकिन सबसे ज्यादा 'दीवार' नाटक से मिली। 1960 के बाद यह थियेटर बन्द हो गया था तथा 1958 के बाद राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थापना हुई इसके स्थापक इब्राहीम अल्का जी थे। छैक्की योजना थी कि यहाँ से निकले लोग रंगमंच का विकास अपने–अपने क्षेत्र या राज्य में जाकर करें।

1950–60 के बीच में कई तरह के रंगमंच विकसित हुए जेसे छैक्ए अनामिका, थियेटर युनिट आदि। जिसके बाद से तीन प्रकार के रंगमंच मिलते हैं।

(1) शास्त्री (2) लोक रंगमंच (3) यथार्थवादी रंगमंच

अतः 1950–60 के बाद से नाटक के रंगमंच के लिए इन्हें तीन विकल्प में से कुछ लोग इन्हें मिलाकर रंगमंच बनाने की कोशिश करते हैं जेसे कुछ यथार्थवादी रंगमंच से लोक रंगमंच का समवेशन करते हैं, कुछ संस्कृत की युक्तियों को लोक नाटकों के साथ मिलने की कोशिश करते हैं यानि इन तीनों रूप से ही आज रंगमंच की विकास यात्रा जारी रही है।

निष्कर्ष

मेरे अनुसार हिन्दी रंगमंच की विकास परंपरा इसी रूप में देखी जा सकती है।

संदर्भ सूचि

1. समालोचक पत्रिका से हिन्दी रंगमंच का विकास, आनंद नारायण शर्मा का लेख, सं.–2005, जून 1959, पृ. 30
2. वही, पृ. 31
3. वही, पृ. 32
4. नाटक के सौ बरस–सं. हरीशचंद्र अग्रवाल, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली
5. समालोचक पत्रिका से हिन्दी रंगमंच का विकास, आनंद नारायण शर्मा का लेख, सं.–2005, जून 1959
6. कक्षा व्याख्यान